अध्यात्म संजीवनी

भक्तिमय भजन संग्रह

अध्यात्म संजीवनी

भक्तिमय भजन संग्रह

प्राचीन कवियों व ज्ञानियों द्वारा विरचित
आध्यात्मिक भक्ति गीतों व स्तुतियों का
अनुपम संकलन

: प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
मुम्बई

प्रथम संस्करण :

आचार्य कुन्दकुन्ददेव आचार्य पदारोहण दिवस (मागशर वद ८)
के पावन अवसर पर प्रकाशित –१९ दिसम्बर २०१९.

मुमुक्षुता की प्रगटता व भावना ही इस पुस्तक का मूल्य है।

अध्यात्म संजीवनी व **स्तवन संजीवनी** में समाहित गीत सभी प्रमुख **AUDIO APP - Gaana, JioSaavan, Amazon Music, Spotify, Apple i-tune, Hungama, Google Music, Wynk Music, Youtube Music** आदि पर नि:शुल्क उपलब्ध है।

प्राप्ति स्थान :

श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सीएचएस लि.
वी.एल.मेहता मार्ग, विले पार्ले (पश्चिम), मुम्बई 400056
website : www.vitragvani.com, **e-mail:** info@vitragvani.com

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट) 364250, फोन : 02846 244334, 244358
website : www.kanjiswami.org, **e-mail** : contact@kanjiswami.org

तीर्थधाम मंगलायतन
अलीगढ़-सासनी मार्ग, सासनी-204216 (हाथरस), उत्तरप्रदेश
मोबा. 9997996346, 9756633800
Website : www.mangalayatan.com; **e-mail :** info@mangalayatan.com

पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए-4, बापू नगर, जयपुर - 302015
फोन. 0141 2707458, 2705581
Website : www.ptst.in, **e-mail :** info@ptst.in

अहो भाव

वीतरागी देव–शास्त्र–गुरू इस पवित्र जैन शासन के मूल आधार हैं। धर्मी श्रावकों को इनके प्रति सहज ही परम उत्कृष्ट अहोभाव आता है। जिनधर्म के प्रति अपूर्व भावना से प्रेरित होकर हजारों वर्षों से प्राकृत, संस्कृत और वर्तमान में हिन्दी तथा अन्य प्रचलित देशीय भाषाओं में अनेक ज्ञानियों व आत्मार्थी कवियों ने आध्यात्मिक भक्ति साहित्य की रचना की है। इन कवि रत्नों में कविवर दौलतरामजी, श्री भूधरदासजी, श्री भागचन्दजी, श्री बुधजनजी, श्री द्यानतरायजी आदि द्वारा प्रसूत ये सभी भक्तियाँ भेदविज्ञान, वीतरागता व वैराग्य रस से सराबोर हैं। इन्हीं कवियों के भक्ति उपवन में से कुछ उत्कृष्ट भक्ति पुष्पों का संकलन यहाँ **अध्यात्म संजीवनी** व **स्तवन संजीवनी** के रूप में निबद्ध कर प्रस्तुत किया जा रहा है; अतः सर्वप्रथम हम उन सभी ज्ञानी कवियों के प्रति अपनी श्रद्धा सुमन समर्पित करते है।

इन आध्यात्मिक पदों को आत्मार्थी भव्य जीवों की आत्मरूचि पुष्ट करने, चिरकाल तक सुरक्षित रखने एवं आगामी पीढ़ी तक पहुँचाने की पवित्र भावना से ही **श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई** के द्वारा यह प्रयास किया गया है। आशा है कि आत्मार्थीजन इस अध्यात्म भक्ति अमृत का रसपान कर ज्ञान और वैराग्य की प्रेरणा लेंगे तथा इन भक्ति गीतों में समाहित भावों को समझकर निज स्वाध्याय में वृद्धि करेंगें।

प्रस्तुत अध्यात्म संजीवनी में ख्याति प्राप्त संगीतकार एवं गायक श्री आसित देसाई तथा सुरेश जोशी द्वारा संगीत की मधुर लहरियाँ तथा देश के कई प्रसिद्ध गायक कलाकारों द्वारा स्वर लहरियाँ प्रदान की गईं हैं; अतः हम उन सभी कलाकारों व सहयोगीयों के प्रति भी अपना हार्दिक आभार व्यक्त करते है।

– श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

अनुक्रमणिका

एलबम-1 अध्यात्म संजीवनी (भाग-1)			पेज नं.
1.	तुम्हारे दर्श बिन स्वामी.....	कवि सेवक	01
2.	नित्य बोधिनी माँ.....	पं.रविंद्रजी	03
3.	वे मुनिवर कब.....	पं.भूधरदासजी	05
4.	ममता की पतवार.....	पंकजजी जैन	07
5.	धरम बिना कोई नहीं.....	पं.बुधजनजी	09
6.	सुन चेतन इक बात.....	पं.द्यानतरायजी	11
7.	हम न किसी के.....	पं.द्यानतरायजी	13
8.	जिया कब तक.....	पं.राजमल्लजी पवैया	15
9.	सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसे.....	पं.भागचंदजी	19
10.	देखा आतमरामा.....	पं.बुधजनजी	21
एलबम-2 अध्यात्म संजीवनी (भाग-2)			
1.	तिहारे ध्यान की मूरत.....	.....	25
2.	जिनवाणी के सुनैं.....	पं.बुधजनजी	27
3.	ऐसी योगी क्यों न.....	पं.दौलतरामजी	29
4.	हम तो कबहूँ.....	पं.दौलतरामजी	31
5.	चेतन यह बुधि.....	पं.दौलतरामजी	33
6.	हे मन तेरी को कुटेव.....	पं.दौलतरामजी	35
7.	बाबा मैं न काहू का.....	पं.बुधजनजी	37
8.	अहो भवि प्राणी चेतिये.....	पं.द्यानतरायजी	39
9.	ज्ञानी जीव निवार.....	पं.दौलतरामजी	41
10.	अब हम अमर.....	पं.द्यानतरायजी	43
एलबम-3 स्तवन संजीवनी			
1.	णमोकार महामंत्र.....		47
2.	जिनजीनी वाणी	श्री हिंमतभाई शाह	48
3.	श्री सदगुरुदेव स्तुति.....	श्री हिंमतभाई शाह	49
4.	अमूल्य तत्व विचार.....	श्रीमद् राजचंद्रजी	51
5.	भगवती माता स्तुति.....	श्री हिंमतभाई शाह	52
6.	एक अद्‌भुत आतमा.....	.....	53
7.	श्री समयसारजी स्तुति.....	श्री हिंमतभाई शाह	55
8.	विरह भक्ति.....	श्री रमेशभाई शाह	57
9.	गुरुदेवश्री प्रत्ये क्षमापना स्तुति.....	.....	58
10.	सहजात्म स्वरुप (धुन).....	.....	59

अध्यात्म संजीवनी

भाग – १

1

तुम्हारे दर्श बिन स्वामी

तुम्हारे दर्श बिन स्वामी, मुझे नहिं चैन पडती है।
छवी वैराग्यमय तेरी, मेरी आँखों में फिरती है।।टेक।।

निराभूषण विगत दूषण, परम आसन मधुर भाषण।
नजर नैनों की आशा की, अनी पर से गुजरती है।।१।।

नहीं कर्मों का डर हमको, कि जब लग ध्यान चरणन में।
तेरे दर्शन से सुनते हैं, करम रेखा बदलती है।।२।।

मिले गर स्वर्ग की सम्पत्ति, अचम्भा कौन सा इसमें।
तुम्हें जो नयन भर देखे, गति दुरगति की टलती है।।३।।

हजारों मूर्तियाँ हमने, बहुत सी अन्य मत देखी।
शांत मूरत तुम्हारी सी, नहीं नजरों में चढती है।।४।।

जगत सिरताज हो जिनराज, सेवक को दरश दीजे।
तुम्हारा क्या बिगड़ता है, मेरी बिगड़ी सुधरती है।।५।।

हे प्रभो! आपके दर्शन के बिना मुझे इस संसार में सदा आकुलता ही भासित होती है। आपकी वैराग्यमय मुद्रा सदैव मेरी आँखो के सामने दिखाई पड़ती है।

हे प्रभो! आप समस्त आभूषण और दोषों से रहित हो, तथा आप समवसरण में सर्वोच्च आसन पर बिराजमान होकर भव्य जीवों को दिव्य देशना प्रदान करते हो। मेरी भावना है कि आप मुझे नजर भर देखें पर आप तो सदैव अपनी नासाग्र दृष्टि से बिराजमान ही हैं।

हे प्रभो! जब तक आपके चरणों में मेरा ध्यान रहता है तब तक मुझे कोई कर्मादि का भय नहीं रहता है क्योंकि ऐसा सुना जाता है कि आपके दर्शन करने से सभी जीवों का भाग्य बदल जाता है।

हे प्रभो! आपके दर्शन करने के पुण्य के फल में यदि स्वर्ग की सम्पत्ति भी मिले तो इसमें क्या आश्चर्य है क्योंकि जो आपकी सौम्य वीतरागी मुद्रा एक बार देखता है उसकी दुर्गति का नाश हो जाता है।

हे प्रभो! हमने अन्य मत की हजारों प्रतिमायें देखी हैं परंतु आपकी शांत और सौम्य मुद्रा के अतिरिक्त अन्य कोई भी मूरत हमें अच्छी नहीं लगती।

हे प्रभो! आप तीन लोकों के सम्राट हैं। मेरी भावना है कि आप मुझे दर्शन दें क्योंकि इसमें आपको तो कोई हानि नहीं है और इससे मेरी दुर्गति का नाश होता है ।

2 नित्य बोधिनी माँ जिनवाणी

नित्य बोधिनी माँ जिनवाणी, चरणो में सादर वंदन।
भटक भटक कर हार गये हम, मेटो भव–भव का क्रंदन।।टेक।।

मै अनादि से मोह नींद की, मदहोशी में मस्त रहा।
परद्रव्योकी आसक्ति में, हरपल में संलग्न रहा।।
खोज रहा परमें सुखको मैं, व्यर्थ गया सारा मंथन।।१।।

अनेकांतमय जिनवाणीने, मुक्ति का पथ दिखलाया।
सप्त तत्व और छह द्रव्यो का, ज्ञान जगत को करवाया।।
हम भी प्रभु वाणी पर चलकर, मेटेंगे भवके बंधन।।२।।

शुद्धातम स्वरुप से सज्जित, द्वादशांगमय जिनवाणी।
पावन वाणी को अपनाकर, लाखो संत बने ज्ञानी।।
जयवंतो हे माँ जिनवाणी, बार–बार हम करे नमन।।३।।

हे! नित्य जागृत करने वाली माता जिनवाणी आपके चरणों में सादर वन्दन करता हूँ। हे माता! इस संसार में भ्रमण करते–करते हम हार गये हैं। अब आपसे प्रार्थना है कि हमारे इन भवों–भवों के दु:खों का अन्त कर दो।

मैं अनादि काल से ही मोह नींद की बेहोशी में मस्त सोता रहा और इसके कारण परद्रव्यों–परसंयोगों में आसक्त बुद्धि रखकर सारा समय उनके संग्रह में ही लगा रहा। मैं व्यर्थ में ही परद्रव्यों में सुख की खोज करता रहा और इससे मेरा सारा चिंतन–मनन व्यर्थ ही हो गया।

अनेकांत बोधक जिनवाणी माता ने इस जगत को मोक्ष का मार्ग दिखाकर, सात तत्व और छह द्रव्यों का सम्यक ज्ञान करवाया है। अब हम भी जिनेन्द्र भगवान द्वारा बताये गये मार्ग पर चलकर इस संसार के बंधनों का नाश करेंगे।

द्वादशांगमय जिनवाणी माता सदैव शुद्धात्म स्वरूप को दिखाने वाली है तथा इसी वाणी को अपनाकर अनेक जीव ज्ञानी और मुनि बने हैं, अत: हे जिनवाणी माँ! हम आपको बारम्बार नमन करते हैं और भावना भाते हैं कि आप सदैव जयवन्त रहो ।

3 वे मुनिवर कब मिली हैं

वे मुनिवर कब मिलि, हैं उपगारी।
साधु दिगम्बर, नगन निरम्बर, संवर भूषण धारी।। टेक।।

कंचन कांच बराबर जिनके, ज्यों रिपु त्यों हितकारी।
महल मसान, मरण अरु जीवन, सम गरिमा अरु गारी।।१।।

सम्यग्ज्ञान प्रधान पवन बल, तप पावक परजारी।
शोधत जीव सुवर्ण सदा जे, काय–कारिमा टारी।।२।।

जोरि युगल कर 'भूधर' विनवे, तिन पद ढोक हमारी।
भाग उदय दर्शन जब पाऊँ, ता दिन की बलिहारी।।३।।

हे आत्मन! कब ऐसा सुयोग आयेगा जब उन उपकार स्वरूपी मुनिराज के दर्शन होंगे! वे मुनिवर जो निर्वस्त्र हैं, समस्त परिग्रह से रहित हैं, जो शुद्ध ध्यान में लीन, समस्त आस्रवों से विरत होकर संवर रूपी आभूषण को धारण किये हुये हैं।

जिनके समक्ष शत्रु–मित्र, स्वर्ण व कांच, महल व श्मशान, जीवन व मृत्यु तथा सम्मान व अपमान सभी परिस्थितियां बराबर हैं अर्थात् जो इनको एक समान मानकर समता भाव रखते हैं, ऐसे साधु के मिलने का सुयोग कब होगा।

वे साधु जो सम्यक्ज्ञान की प्रधानता के बल से तप की अग्नि में समस्त परभावों की आहुति देते हैं। देह की कालिमा से अपने को भिन्न जानकर सुवर्ण के समान अपने शुद्ध स्वभाव के शोधन में ही लीन रहते हैं, उनके दर्शनों का सुयोग कब प्राप्त होगा।

ऐसे मुनिराज को भूधरदासजी दोनों हाथ जोड़कर विनय पूर्वक नमस्कार करके कहते हैं कि भाग्य के उदय से जिस दिन ऐसे साधु के दर्शन का सौभाग्य मिले, उस दिन पर सब कुछ न्यौछावर है क्योंकि वह दिन ही वास्तव में जीवन का सर्वोत्कृष्ट दिन होगा।

4

ममता की पतवार

ममता की पतवार ना तोडी, आखिर को दम तोड दिया।
एक अनजाने राही ने, शिवपुर का मारग छोड दिया ।।टेक।।

नरक में जिसने भावना भायी, मानुषतन को पाने की।
भेष दिगंबर धारण कर के, मुक्ति पद को पाने की।।
लेकिन देखो आज ये हालत, ममता के दीवाने की।
चेतन होकर जड द्रव्यो से, कैसा नाता जोड लिया।।
एक अनजाने राही ने, शिवपुर का मारग छोड दिया ।।१।।

ममता के बंधन में बंधकर, क्या युग–युग तक सोना है ?
मोह अरीका सचमुच इसपर, हो गया जादु टोना है।।
चेतन क्या नरतन को पाकर, अब भी यूँ ही खोना है।
मन का रथ क्यों शिवमारग से, कुमारग को मोड दिया।।
एक अनजाने राही ने, शिवपुर का मारग छोड दिया ।।२।।

मत खोना दुनिया मे आकर, ये बस्ती अनजानी है।
जायेगा हर आनेवाला, जग की रीत पुरानी है।।
जीवन बन जाता यहाँ पंकज, सबकी एक कहानी है।
चेतन देखा निज स्वरूप तो, दुःख का दामन तोड दिया।।
एक अनजाने राही ने, शिवपुर का मारग छोड दिया ।।३।।

अज्ञानी जीव ने मोह ममत्व का पक्ष तो छोड़ा नहीं और इस मनुष्य पर्याय को व्यर्थ में गवाँ दिया। इस तरह मोक्षमार्ग से अनभिज्ञ जीव ने मोक्ष अर्थात् सुख के मार्ग का त्याग कर दिया।

जब यह जीव नरक गति में था तो वहाँ के दुःखों से डरकर इसने मनुष्य पर्याय की प्राप्ति की तथा दिगम्बर दीक्षा धारण करके मोक्ष पद को प्राप्त करने की भावना भाई थी। लेकिन मनुष्य पर्याय मिलने के बाद यह अपनी उस भावना को भूल गया और मोह में दीवाने इस जीव की आज ऐसी अवस्था हो गई कि इसने स्वयं चेतन द्रव्य होकर जड़ पुदगल द्रव्यों को अपना साथी मान लिया।

हे चेतन! मोह के बंधन में बंध कर क्या अनंत काल इस तरह ही व्यतीत करना है..? लगता है सचमुच इस चेतन आत्मा पर मोह शत्रु ने कोई जादू टोना सा कर दिया है जिससे इसे आत्मा का हित पसंद नहीं आता। हे चेतन! क्या इस दुलर्भ मनुष्य पर्याय को प्राप्त करके भी यूँ ही व्यर्थ में बरबाद करना है। पता नहीं क्यों यह अज्ञानी जीव अपने मन के रथ को मोक्ष के मार्ग से विपरीत संसार मार्ग की ओर ले जा रहा है।

हे चेतन! तुम इस क्षणभंगुर जगत के स्वरूप से अनजान हो। इसकी संगती में तुम अपने स्वरूप को मत भूल जाना। इस संसार में जन्म लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति का मरण निश्चित ही है, यह तो इस संसार की अनादि काल की परम्परा है। कवि कहते हैं कि यहाँ सभी अज्ञानी जीवों का एक जैसा ही व्यवहार देखा जाता है पर जो मनुष्य पर्याय का सदुपयोग करता है और अपने स्वरूप को पहचानता है तो उसके समस्त दुखों का संयोग छूट जाता है तथा उसे सुख अर्थात् मुक्ति की प्राप्ति होती है ।

5

धरम बिना कोई नहीं

धरम बिन कोई नहीं अपना,
सब सम्पत्ति धन थिर नहिं जग में,
जिसा रैन सपना ।।धरम.।।टेक।।

आगैं किया सो पाया भाई, याही है निरना।
अब जो करैगा सो पावैगा, तातैं धर्म करना ।।१।। धरम.।।

ऐसै सब संसार कहत है, धर्म कियैं तिरना।
परपीडा बिसनादिक सेवैं, नरक विषैं परना ।।२।। धरम.।।

नृप के घर सारी सामग्री, ताकैं ज्वर तपना।
अरु दारिद्री कैं हू ज्वर है, पाप उदय थपना ।।३।। धरम.।।

नाती तो स्वारथ के साथी, तोहि विपत भरना।
वन गिरि सरिता अगनि युद्ध में, धर्महि का सरना ।४। धरम.।।

चित बुधजन सन्तोष धारना, पर चिन्ता हरना।
विपति पडै तो समता रखना, परमातम जपना ।।५।। धरम.।।

हे जीव! इस जगत में सच्चे धर्म के अलावा अपना कोई साथी नहीं है। जगत के सभी संयोग धन–सम्पत्ति रात के स्वप्न के समान अस्थिर है ।

मुझे यह निर्णय हो गया है कि जो जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही फल मिलता है और अब जो जैसा कर्म करेगा उसका फल आगामी काल में वैसा ही मिलेगा, इसलिये अब धर्म कार्य ही करना चाहिये।

जगत में सभी ज्ञानी जीव कहते हैं कि धर्म करने से ही संसार सागर से पार होते हैं और विषय भोग के सेवन तथा अन्य जीवों को दुख देने का फल तो नरक गति के दु:ख ही है।

जैसे राजा के पास सुख की सारी अनुकूल सामग्री होने पर भी बुखार आने पर उसे भी दुख होता है वैसे ही निर्धन व्यक्ति को भी बुखार आने पर दु:ख होता है अर्थात् पाप के उदय में सभी को दु:ख भोगना पड़ता है।

परिवार के नाती–पोते संबंधी आदि तो सभी स्वार्थ के साथी हैं और संकट ही उत्पन्न करने वाले हैं। अत: वन, पर्वत, नदी, अग्नि और युद्ध आदि स्थितियों में धर्म ही जीव को एकमात्र सहारा है।

बुधजन कवि कहते हैं कि इन सबको जानकर हमें मन में संतोष धारण करना चाहिये और अन्य चिन्ताओं को छोड़कर विपत्ति के आने पर समता भाव रखकर परमात्मा का, भगवन्तों का नाम स्मरण करना चाहिये।

6 सुन चेतन इक बात

सुन चेतन इक बात हमारी, तीन भुवन के राजा।
रंक भये बिललात फिरत हो, विषयनि सुख के काजा ।।१।।

चेतन तुम तो चतुर सयाने, कहाँ गई चतुराई।
रंचक विषयनि के सुखकारण, अविचल ऋद्धि गमाई ।।२।।

विषयनि सेवत सुख नहिं राई, दुःख है मेरु समाना।
कौन सयानप कीनी भौंदू, विषयनि सों लपटाना ।।३।।

इस जग में थिर रहेना नाहीं, तैं रहेना क्यों माना।
सूझत नाहिं कि भांग खाइ है, दीसै परगट जाना ।।४।।

तुम को काल अनन्त गये हैं, दुःख सहते जगमांही।
विषय कषाय महारिपु तेरे, अजहूँ चेतत नाहीं ।।५।।

ख्याति लाभ पूजा के काजैं, बाहिज भेष बनाया।
परमतत्त्व का भेद न जाना, वादि अनादि गँवाया ।।६।।

अति दुर्लभ तैं नर भव लहेकैं, कारज कौन समारा।
रामा रामा धन धन साँटैं, धर्म अमोलक हारा ।।७।।

घट घट साईं मैंनू दीसै, मूरख मरम न पावे।
अपनी नाभि सुवास लखे विन, ज्यों मृग चहुँ दिशि धावै ।८।

घट घट साई घट सा नाईं, घटसों घट में न्यारो।
घूंघट का पट खोल निहारो, जो निजरूप निहारो ।।९।।

ये दश माझ सुनैं जो गावै, निरमल मन सा कर के।
'द्यानत' सो शिव सम्पति पावै, भवदधि पार उतर के ।।१०।।

हे चेतन प्राणी! हमारी एक बात को ध्यान से सुन! अरे तुम तो तीन लोक के स्वामी हो और फिर भी तुम इन्द्रिय विषय भोगों में लुब्ध होकर दरिद्री बनकर दुखी हो रहे हो।

अरे चेतन! तुम तो बहुत चतुर हो, सयाने हो, वह तुम्हारी चतुराई कहाँ गई? थोड़े से इन्द्रिय–विषयों के सुख के कारण, शाश्वत रहने वाली ऋद्धि को तुमने गवाँ दिया है।

इन्द्रिय–विषयों के सेवन में राई जितना भी सुख नहीं है। उल्टा इनके सेवन करने में मेरू पर्वत के समान महादु:ख है। अरे मूर्ख! तब भी तू इन विषयों से लिपटा हुआ है, यह तूने कैसा सयानापन किया है ।

इस अस्थिर जगत में कुछ भी स्थिर नहीं रहता है तो तू सदा काल रहेगा तूने ऐसा क्यों मान लिया? प्रकट में संयोगों को जाता देखकर भी तुझे ख्याल नहीं आता, लगता है कि तूने भांग खा रखी है जिससे तेरी सोचने –समझने की शक्ति क्षीण हो गई है।

इस जगत में दु:ख सहते–सहते तुम्हें अनन्तकाल व्यतीत हो गये तब भी तुझे भान नहीं हुआ कि ये इन्द्रिय विषय और कषाय ही तेरे महान शत्रु हैं।

जगत में यश, लाभ और पूजा(मान) के लिये तूने अपना यह बाहर का वेश बना रखा है। तूने परमतत्त्व को अर्थात् वस्तु स्वरूप को तो समझा नहीं और व्यर्थ में ही अनादिकाल से समय गँवाता जा रहा है।

यह दुर्लभ नर देह को पाकर तुमने क्या कार्य सम्पन्न किया? स्त्री–पुत्र और धन–सम्पदा के लिये तूने अमूल्य जिन धर्म को गँवा दिया।

ज्ञानी जीवों को घट–घट में, प्रत्येक देह में अनन्त शक्तिशाली आत्मा दिखाई देती है पर मूर्ख उसे समझ नहीं पाते। जैसे अपनी नाभि में रखी कस्तूरी की सुगंध से अनजान मृग उसके लिये सभी दिशाओं में दौड़ता फिरता है।

घट–घट में आत्मा विद्यमान होने पर भी उसका स्वरूप घट से अलग है तथा वह घट में रहकर भी घट से भिन्न है। जिस प्रकार घूंघट को हटाने के बाद स्त्री का सुंदर मुख दिखाई देता है वैसे ही जब यह जीव इस घट अर्थात् देह से भिन्न आत्म तत्त्व को दृष्टिंगत करता है तब उसको निज आत्मस्वरूप के दर्शन होते हैं।

कवि द्यानतरायजी कहते हैं कि जो अपने मन को निर्मलकर इन दस पदों को सुनते और धारण करते हैं वे संसार समुद्र से पार होकर मुक्ति रूपी लक्ष्मी को प्राप्त करते हैं।

7

हम न किसी के

हम न किसी के कोई न हमारा, झूठा है जगका ब्योहारा...
तन सम्बन्धी सब परिवारा, सो तन हमने जाना न्यारा ।।
हम न किसी के ..... ।।

पुन्य उदय सुखका बढ़वारा, पाप उदय दुःख होत अपारा ।
पाप पुन्य दोऊ संसारा, मैं सब देखन जानन हारा ।।१।।

मैं तिहुँ जग तिहुँ काल अकेला, पर संजोग भया बहु मेला ।
थिति पूरी करि खिर खिर जांहीं, मेरे हर्ष शोक कछु नाहीं ।।२।।

राग भावतैं सज्जन मानैं, दोष भावतैं दुर्जन जानैं ।
राग दोष दोऊ मम नाहीं, 'द्यानत' मैं चेतनपदमाहीं ।।३।।

हे जीव! हम न तो किसी के हैं और न ही कोई हमारा है। जग में जो भी अपना–पर का व्यवहार प्रचलित है वह नितान्त झूठा है, अस्थिर है। यह सब परिवारजन तो इस शरीर मात्र से ही सम्बन्धित है अत: हमने यह तन भी हमसे न्यारा है, भिन्न है ऐसा जान लिया है।

पुण्य के उदय में सुख की वृद्धि होती है और पाप उदय में अपार दु:ख उत्पन्न होता है। लेकिन वास्तव में पाप और पुण्य ये दोनों ही संसार का कारण हैं, मैं तो इन सबका ज्ञाता–दृष्टा मात्र हूँ।

मैं तीनों लोक में और तीनों काल में सदा अकेला ही हूँ। परद्रव्य के संयोग के कारण यह परिवारजन का मेला मिल गया है। लेकिन जैसे–जैसे इनकी स्थिति पूरी होती जाती है, ये सभी संयोग विघटित होते जाते हैं, खत्म होते जाते हैं इसलिये इन संयोगों के प्रति न मुझे हर्ष है और न ही कोई शोक है।

यह जीव राग भाव के कारण अन्य जीवों को सज्जन और द्वेष भाव के कारण अन्य जीवों को दुर्जन जानता है। परन्तु द्यानतरायजी कहते हैं कि राग और द्वेष ये दोनों भाव मेरे नहीं हैं। मेरा तो एकमात्र यह चेतनपद ही है, जो इन दोनों परिणामों से भिन्न है।

8

जिया कब तक

जिया कब तक उलझेगा, संसार विकल्पों में।
कितने भव बीत चुके, संकल्प विकल्पों में ।।टेक।।

उड–उड कर यह चेतन, गति गति में जाता है।
रागों में लिप्त सदा, भव भव दुःख पाता है।।
क्षण भर को भी न कभी, निज आतम ध्याता है।
निज तो न सुहाता है, पर ही मन भाता है।
यह जीवन बीत रहा, झुठे संकल्पों में ।। जिया–१।।

निज आत्मस्वरूप लखो, तत्वों का कर निर्णय।
मिथ्यात्व छूट जावे, समकित प्रगटे सुखमय।।
निज परणति रमण करे, हो निश्चय रत्नत्रय।
निर्वाण मिले निश्चय, छूटे भवदुःख भयमय।।
सुख ज्ञान अनन्त मिले, चिन्मय की गल्पों में ।। जिया–२।।

शुभ अशुभ विभाव तजो, हैं हेय अरे आस्रव।
संवर का साधन ले, चेतन का कर अनुभव।।
शुद्धातम का चिंतन, आनन्द अतुल अभिनव।
कर्मों की पगध्वनि का, मिट जावेगा कलरव।।
तू सिद्ध स्वयं होगा, पुरुषार्थ स्वकल्पों में ।। जिया–३।।

हे मन! तुम कब तक इस असार संसार के विकल्पों में उलझोगे। जिन संकल्प और विकल्पों के जाल में उलझकर तुमने अनन्त भव व्यर्थ बिता दिये ।

हे मन! मिथ्या मान्यता के कारण यह जीव चारों गतियों में भ्रमण करता रहता है और राग के स्वरूप को अपना मानकर हर पर्याय में दु:ख भोगता है। एक क्षण के लिये भी अपने आत्मा का ध्यान नहीं करता, इस जीव को निज आत्मस्वरूप तो पंसद नहीं आता और पर पदार्थ की रमणता ही सुहाती है। इस तरह यह संपूर्ण जीवन इन बाहर के झूठे पुरूषार्थ में ही व्यतीत होता जाता है।

हे चेतन! अब सम्यक् तत्त्वों का निर्णय कर अपने आत्मा के स्वरूप को देखो जिससे मिथ्यात्व का अभाव हो जायेगा और सुख स्वरूपी सम्यकदर्शन प्रगट होगा तथा इसी सम्यग्दर्शन के द्वारा अंतर परिणति में सम्यकज्ञान व सम्यकचारित्र रूपी रत्नत्रय की प्राप्ति होगी। जिससे नियम से समस्त दुखों से छुटकारा रूपी मोक्ष की प्राप्ति होगी।

हे जीवराज! अब शुभ और अशुभ विभावी भावों का त्याग करो, क्योंकि ये सभी आस्रव होने से छोड़ने योग्य हैं। तुमतो संवर को साधन बनाकर अपने चेतन तत्त्व का अनुभव करो। तुम अनुपम और नित नवीन आनंद देने वाले इस शुद्धात्मा का चिन्तन करो, जिससे कर्मबन्धन की श्रृंखला का अभाव होगा और तुम स्वयं अपने ही पुरूषार्थ से अल्प समय में सिद्ध दशा की प्राप्ति करोगे।

जिया कब तक

नर रे नर रे नर रे, तू चेत अरे नर रे।
क्यों मूढ़ विमूढ़ बना, कैसा पागल खर रे।।
अन्तर्मुख हो जा तू, निज में निज रस भर रे।
पर अवलंबन तज रे, निज का आश्रय कर रे।।
पर परिणति विमुख हुआ, तो सुख पल अल्पों में।।जिया–४।।

तू कौन कहां का है, अरु क्या है नाम अरे।
आया है किस घर से, जाना किस गाँव अरे।।
सोचा न कभी तुने, दो क्षण की छांव अरे।
यह तन तो पुद्गल है, दो दिन की ठांव अरे।।
तू चेतन द्रव्य सबल, ले सुख अविकल्पों में।।जिया–५।।

यदि अवसर चूका तो, भव–भव पछतायेगा।
फिर काल अनन्त अरे, दुःख का घन छायेगा।।
यह नरभव कठिन महा, किस गति में जायेगा।
नरभव भी पाया तो, जिनश्रुत नहिं पायेगा।।
अनगिनत जन्मों में, अनगिनत कल्पों में।।जिया–६।।

हे मनुष्य! सुन.. सुन.. तू अभी भी जाग जा, सचेत हो जा तू क्यों पागल पशु की तरह मूर्ख बना हुआ है। अब तू अर्न्तमुख हो जा और अपने ज्ञान की पर्याय में आत्म स्वभाव की महिमा को ला, पराधीनता को छोड़कर अपने स्वरूप का आश्रय कर। यदि पर तरफ की दृष्टि छोड़ देगा तो कुछ ही समय में तुझे अतीन्द्रिय सुख की प्राप्त होगी।

हे चेतन! तू कौन है, तेरा क्या स्वरूप है और तेरा वास्तविक नाम क्या है, कहाँ से तू आया है और कहाँ तुझे जाना है? क्या कभी कुछ समय निकालकर तूने इन सब बातों पर विचार किया है कि यह शरीर तो जड़ पुद्गल का बना हुआ है और कुछ समय मात्र के लिये ही इसका संग तुझे प्राप्त हुआ है। तुम तो स्वयं अतुल बल के धनी चेतन द्रव्य हो इसलिये जड़ पदार्थों को छोड़कर निर्विकल्प सुख को शीघ्र प्राप्त करो।

हे जीव! यदि अब भी यह मनुष्य पर्याय का दुर्लभ अवसर चला गया तो तुझे न जाने कितने भवों तक पछताना पड़ेगा और फिर अनन्त काल तक भयंकर दु:खों को भोगना पड़ेगा। यदि इस दुर्लभता से प्राप्त मनुष्य पर्याय का सदुपयोग नहीं किया तो पता नहीं तुझे कौनसी गति प्राप्त होगी और यदि पुण्योदय से मनुष्य पर्याय प्राप्त भी हो गई तो जिनकुल और जिनवाणी प्राप्त नहीं होगी और फिर से अनन्त जन्मों और अनंत कालों तक तुझे इस संसार में भटकना पड़ेगा।

9 सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसे

सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसे,
आतमरूप अबाधित ज्ञानी ।।टेक।।

रोगादिक तो देहाश्रित हैं, इनतें होत न मेरी हानी।
दहन दहत ज्यों दहन न तदगत, गगन दहन ताकी विधि ठानी ।।१।।

वरणादिक विकार पुद्गलके, इनमें नहिं चैतन्य निशानी।
यद्यपि एकक्षेत्र–अवगाही, तद्यपि लक्षण भिन्न पिछानी ।।२।।

मैं सर्वांगपूर्ण ज्ञायक रस, लवण खिल्लवत लीला ठानी।
मिलौ निराकुल स्वाद न यावत, तावत परपरनति हित मानी ।।३।।

'भागचन्द्र' निरद्वन्द निरामय, मूरति निश्चय सिद्धसमानी।
नित अकलंक अवंक शंक बिन, निर्मल पंक बिना जिमि पानी ।।४।।

दिगम्बर वीतरागी ज्ञानी संत निराबाध (बाधारहित) अपने आत्म स्वरूप का चिन्तन करते हैं।

वे मुनिवर विचार करते हैं कि ये रोग तो शरीर के आधार से हुये हैं और चेतन तत्व होने से इनसे मेरा कोई नुकसान नहीं है। जिस प्रकार अग्नि में ईंधन जलता है परन्तु अग्नि ईंधन रूप नहीं होती, तथा जैसे आकाश में अग्नि की उष्णता दिखाई देने पर भी आकाश के प्रदेश जलते नहीं हैं तात्पर्य यह है कि आत्मा सकल ज्ञेयों को जानने पर भी ज्ञेय रूप नहीं होता।

वर्ण, रस आदि ये सभी पुद्गल का विकारी परिणमन है। इसमें चैतन्य का अंश मात्र भी नहीं है। यद्यपि एक क्षेत्र में मिले हुये दिखाई देने पर भी शरीर और आत्मा दोनों के लक्षण सदैव भिन्न–भिन्न हैं।

जिस प्रकार नमक के सारे प्रदेशों में खारापन व्याप्त है उसी प्रकार मेरे सम्पूर्ण आत्म प्रदेशों में एक मात्र ज्ञायक की अनुभूति ही है। जब तब इस जीव को आत्म तत्त्व की निराकुलता के आनन्द की अनुभूति नहीं होती तब तक यह जीव पर द्रव्यों से अपना हित मानता रहता है।

भागचन्द्र कवि कहते हैं कि मुनिभगन्त विचार करते हैं कि निश्चय से यह आत्मा सिद्धों के समान, निरद्वन्द और विकार रहित है। जिस प्रकार कीचड़ रहित पानी शुद्ध और निर्मल होता है वैसे ही यह आत्मा सदा कलंक से रहित, आश्चर्यकारी और शंकादि दोषों से रहित चैतन्य वस्तु है ।

10 देखा आतमरामा

देखा आतमरामा, मैंने देखा आतमरामा ।।टेक।।

रूप फरस रस गंध तैं न्यारा, दरस–ज्ञान–गुनधामा ।
नित्य निरंजन जा कै नाहीं, क्रोध लोभ मद कामा ।।१।।
।।मैंने.।।

भूख प्यास सुख दुःख नहिं जा कै, नाहिं बन पुर गामा ।
नहिं साहब नहिं चाकर भाई, नहीं तात नहिं मामा ।।२।।
।।मैंने.।।

भूलि अनादि थकी जग भटकत, लै पुद्गल का जामा ।
'बुधजन' संगति जिनगुरु की तैं, मैं पाया मुझ ठामा ।।३।।
।।मैंने.।।

ज्ञानी जीव ऐसा कहते है कि मैंने आतमराम को देख लिया अर्थात् उसका अनुभव कर लिया है।

कैसा है वह आतमा – स्पर्श, रस, गंध और वर्ण से रहित दर्शन, ज्ञान आदि गुणों का धाम हैं और क्रोध, लोभ, मान और माया आदि कषाय परिणामों की कालिमा से रहित होने से सदा पवित्र ही है ।

और जिसको भूख–प्यास, सुख–दुःख आदि की व्याधि नहीं है तथा न ही उसके पास वन, नगर और गाँव रूपी परिग्रह हैं। मेरी आत्मा का कोई स्वामी नहीं, कोई नौकर नहीं और न ही पिता या मामा जैसे कोई सम्बन्धी हैं।

बुधजन कवि कहते हैं कि अनादि काल से इस पुद्गल द्रव्य की प्रीति के कारण संसार में भटकते हुये अब मैं थक गया हूँ। अतः अब, जब मैंने वीतरागी भगवन्तों और श्री मुनिराज की संगति की तो मुझे मेरा आत्मा अर्थात् मेरा निज स्थान मिल गया।

अध्यात्म संजीवनी

भाग – २

1 तिहारे ध्यान की मूरत

तिहारे ध्यान की मूरत, अजब छवि को दिखाती है।
विषय की वासना तज कर, निजातम लौ लगाती है।।टेक।।

तेरे दर्शन से हे स्वामी, लखा है रूप मैं मेरा।
तजूं कब राग तन–धन का, ये सब मेरे विजाती हैं।।१।।

जगत के देव सब देखे, कोई रागी कोई द्वेषी।
किसी के हाथ आयुध है, किसी को नार भाती है।।२।।

जगत के देव हठ ग्राही, कुनय के पक्षपाती हैं ।
तू ही सुनय का है वेत्ता, वचन तेरे अघाती है।।३।।

मुझे कुछ चाह नहीं जग की, यही है चाह स्वामी जी।
जपूं तुम नाम की माला, जो मेरे काम आती है।।४।।

तुम्हारी छवि निरख स्वामी, निजातम लौ लगी मेरे।
यही लौ पार कर देगी, जो भक्तों को सुहाती है।।५।।

हे प्रभो! आपकी ध्यानस्थ मुद्रा एक अलौकिक स्वरूप को प्रदर्शित करती है। जिसके अवलोकन मात्र से भोगों की इच्छाओं का त्याग करके आत्मा को प्राप्त करने की प्रेरणा मिलती है।

हे प्रभो! आपके दर्शन करने से मुझे मेरे आत्मस्वरूप का दर्शन हुआ है। जिसके कारण अब ऐसा लगने लगा कि मैं किस क्षण इस नश्वर देह और संयोगों के राग का त्याग करूँ क्योंकि ये सब वास्तव में मेरे स्वरूप से भिन्न हैं।

हे प्रभो! मैंने विश्व के सारे भगवानों को देखा लेकिन इन सभी में कोई रागी और कोई द्वेषी भासित होता हैं क्योंकि कोई भगवान हाथ में शस्त्रादि लिये हुये हैं तो किसी को स्त्रियों का संग पंसद है।

हे प्रभो! संसार के ये देव एकांत को ग्रहण करने वाले हैं और मिथ्या नय का पक्ष धरने वाले हैं। आप ही सम्यक् नयों के कथन करने वाले ज्ञानी हैं जिससे आपके वचनों का कोई विरोध नहीं कर सकता।

हे प्रभो! मुझे इस संसार सम्बन्धी कोई इच्छायें नहीं है। मेरी तो एक मात्र यही भावना है कि मैं मेरा कल्याण करने वाली आपके नाम की माला का सदा स्मरण करता रहूँ।

हे प्रभो! आपकी सौम्य मुद्रा को देखकर मुझे भी अपने आत्म कल्याण की इच्छा जागृत होने लगी है और यही आत्मकल्याण की इच्छा ही नियम से हम भक्तों को संसार सागर से पार कर देगी।

2 जिनबानी के सुनै सौं मिथ्यात

जिनबानी के सुनै सौं मिथ्यात मिटै।
मिथ्यात मिटै समकित प्रगटे ।।टेक।।

जैसैं प्रात होत रवि ऊगत,
रैन तिमिर सब तुरत फटै।।१।।जिनबानी.।।

अनादि काल की भूलि मिटावै,
अपनी निधि घट घट में उघटे।

त्याग विभाव सुभाव सुधारै,
अनुभव करतां करम कटै ।।२।।जिनबानी.।।

और काम तजि सेवो याकौं,
या बिन नाहिं अज्ञान घटै।

बुधजन या भव परभव मांहीं,
बाकी हुंडी तुरत पटे ।।३।।जिनबानी.।।

हे जीव! जिनेन्द्र भगवान की वाणी अर्थात् जिनवाणी के श्रवण करने से मिथ्या मान्यता का विनाश होकर सम्यक्त्व की प्रगटता होती है तथा जैसे प्रातःकाल सूर्य के उदय होने पर रात्रिकालीन अन्धकार तुरन्त विलय को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार सम्यक्त्व रूपी सूर्य के उदय होते ही मिथ्यात्व का नाश हो जाता है।

जिनवाणी माता जीव की अनादि काल की भूल मिटाकर स्वआत्मनिधि को पूर्ण रूप में प्रगट कराती है। विभावी भावों का त्याग कराके स्वभाव का ग्रहण कराती है और उस आत्मा के अनुभव के द्वारा ही कर्मों का नाश होना बताती है।

अतः हे जीव! बाकी के सभी बाह्य कार्यों को त्यागकर जिनवाणी की ही सेवा करो क्योंकि इसके सुने बिना समझे बिना अज्ञान का नाश नहीं होता। बुधजन कवि कहते हैं कि जिनवाणी के श्रवण करने वालों के इस भव के व पूर्व भवों के कर्ज तुरंत पट जाते हैं अर्थात् पुराने कर्म तुरन्त नाश को प्राप्त हो जाते हैं व सद्गति की प्राप्ति होती है।

3 ऐसा योगी क्यों न अभय पद पावे

ऐसा योगी क्यों न अभय पद पावै,
सो फेर न भव में आवै ।।टेक.।।

संशय विभ्रम मोह–विवर्जित, स्वपर स्वरूप लखावै ।
लख परमातम चेतन को पुनि, कर्म कलंक मिटावै।।१।। ऐसा.

भवतन भोग विरक्त होय तन, नग्न सुभेष बनावै ।
मोह विकार निवार निजातम–अनुभव में चित लावै।।२।। ऐसा.

त्रस–थावर वध त्याग सदा, परमाद दशा छिटकावै ।
रागादिकवश झूठ न भाखै, तृणहु न अदत गहावै।।३।। ऐसा.

बाहिर नारि त्यागि अंतर, चिद्ब्रह्म सुलीन रहावै ।
परमाकिंचन धर्मसार सो, द्विविध प्रसंग बहावै।।४।। ऐसा.

पंच समिति त्रय गुप्ति पाल, व्यवहार–चरनमग धावै ।
निश्चय सकल कषाय रहित ह्वै, शुद्धातम थिर थावै।।५।। ऐसा.

कुंकुम पंक दास रिपु तृण मणि, व्याल माल सम भावै ।
आरत रौद्र कुध्यान विडारे, धर्म शुकलको ध्यावै।।६।। ऐसा.

जाके सुख समाज की महिमा, कहत इन्द्र अकुलावै ।
'दौल' तासपद होय दास सो, अविचल ऋद्धि लहावै।।७।। ऐसा.

ऐसा योगी (जिसका स्वरूप नीचे वर्णित है) अभय अर्थात् शाश्वत पद क्यों नहीं प्राप्त करेगा, अर्थात् करेगा ही। जिससे संसार में फिर उसका आवागमन नहीं होगा।

जो संशय, विभ्रम और विमोह से भिन्न, अपना और अन्य का अर्थात् स्व और पर के भेद स्वरूप को स्पष्ट जानता व देखता है। जो अपने परमात्म स्वरूप को जानकर आत्मा पर लगे कर्मरूपी कलंक को मिटाता है, ऐसा योगी शाश्वत पद क्यों नहीं प्राप्त करेगा।

जो संसार—शरीर व भोगों से विरक्त होकर नग्न वेश को धारण करता है और मोहनीय कर्म के विकारों को मिटाकर अपनी आत्मा के अनुभव में अपने मन को लगाता है, ऐसा योगी अभय पद क्यों नहीं प्राप्त करेगा।

जो सदैव प्रमाद दशा को छोड़कर स्थावर (एकेन्द्रिय) और त्रस (दो इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय) जीवों की हिंसा का त्यागी हो और राग—द्वेष के वश होकर भी कभी झूठ न बोले और बिना दिया हुआ एक तिनका भी ग्रहण न करे, ऐसा योगी अभय पद क्यों न प्राप्त करेगा।

जो बाह्य में स्त्री त्याग अर्थात् पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे तथा अपने अंत:करण में अपने चैतन्यगुणों में निमग्न रहवे और पूर्णतया धर्म का सार रूप अपरिग्रह अर्थात् बाह्य और आंतरिक दोनों प्रकार के परिग्रह से रहित जीवन का निर्वाह करे, ऐसा योगी अभय अर्थात् शाश्वत पद क्यों नहीं प्राप्त करेगा।

जो व्यवहार में पाँच समिति, तीन गुप्ति का निरतिचार पालन करते हुये शुद्ध आचरण को धारण करे और फिर निश्चय से सभी कषायों को छोड़कर अपने शुद्ध आत्मध्यान में सदा स्थिर हो, ऐसा योगी अभय अर्थात् शाश्वत पद क्यों नहीं प्राप्त करेगा।

केसर या कीचड़, शुत्र या नौकर, मणि या तिनका, सर्प हो या माला इन सबमें अर्थात् अनुकूल व प्रतिकूल दोनों संयोगो में समताभाव रखे। आर्त और रौद्र नाम के दोनों अपध्यानों को छोड़कर धर्म और शुक्ल ध्यान को ध्यावे, ऐसा योगी अभय पद क्यों नहीं प्राप्त करेगा।

जिसके अलौकिक सुख के भंडार की महिमा का वर्णन करने में इन्द्र भी समर्थ नहीं है अर्थात् इन्द्र भी उनके गुणों को पूर्ण रूप से नहीं कह सकता। ऐसे योगी के लिये दौलतरामजी कहते हैं कि जो ऐसे योगी मुनिवर के चरणों की भक्ति करता है, सेवा करता है वह स्थिर रूप से शाश्वत ऋद्धियों को प्राप्त करता है।

4

हम तो कबहुँ

हम तो कबहुँ न निज घर आये ।।टेक।।

पर घर फिरत बहुत दिन बीते, नाम अनेक धराये ।।
हम तो....

परपद निजपद मानि मगन है, पर परनति लपटाये ।
शुद्ध–बुद्ध सुख कन्द मनोहर, चेतन भाव न भाये ।।१।।
हम तो....

नर पशु देव नरक निज जान्यो, परजय बुद्धि लहाये ।
अमल अखण्ड अतुल अविनाशी, आतमगुन नहिं गाये ।।२।।
हम तो....

यह बहु भूल भई हमरी फिर, कहा काज पछताये ।
'दौल' तजौ अजहूँ विषयन को, सत्गुरु वचन सुनाये ।।३।।
हम तो....

हे आत्मन्! हमने कभी अपने वास्तविक घर में निवास नहीं किया और अपने चेतन स्थान को छोड़कर अनादि से हम चार गतियों में ही भटकते रहे और अनेकों बार अनेक नाम धारण किये अर्थात् भिन्न–भिन्न पर्यायों में अनेक नामों से जाने जाते रहे।

हम पर पद को ही अपना वास्तविक स्थान मानकर उसमें ही लीन हो गये, अपनी आत्मा के गुणों को तो पहचाना नहीं, और पर परिणति में उलझते रहे, उनसे लिपटे रहे। यह आत्मा मूल में तो शुद्ध, ज्ञानवान, सुख का भंडार, पूर्ण सुन्दर है लेकिन हमने उस आत्मा के अनुपम गुणों का कभी चिन्तन ही नहीं किया।

हमने चारों गतियों में भ्रमण करते हुये प्राप्त देह को ही अपना स्वरूप माना और प्राप्त पर्याय में ही अपनेपन की कल्पना करते रहे। यह आत्मा तो निर्मल, अखण्ड, विशाल व अविनाशी है। हमें इन चैतन्य के गुणों की महिमा ही नहीं आई।

आतमा का हित क्या है उसे तो जाना ही नहीं। यही हमारी बहुत बड़ी भूल रही और अब हमारे पास मात्र पछताने के और कोई मार्ग नहीं बचा। अत: दौलतरामजी कहते हैं कि अब भी समय है इन भोग विषयों का तत्क्षण त्याग करना ही उचित है तथा सच्चे गुरूओं की वाणी ही सुनने योग्य है।

5

चेतन यह बुधि

चेतन यह बुधि कौन सयानी,
कही सुगुरु हित सीख न मानी ।।
कठिन काकताली ज्यौं पायौ,
नरभव सुकुल श्रवन जिनवानी ।। चेतन.।।

भूमि न होत चाँदनी की ज्यौं,
त्यौं नहिं धनी ज्ञेय का ज्ञानी ।
वस्तुरूप यौं तू यौं ही शठ,
हटकर पकरत सोंज विरानी ।।१।। चेतन.।।

ज्ञानी होय अज्ञान राग–रुषकर,
निज सहज स्वच्छता हानी ।
इन्द्रिय जड़ तिन विषय अचेतन,
तहाँ अनिष्ट इष्टता ठानी ।।२।। चेतन.।।

चाहै सुख, दुःख ही अवगाहै,
अब सुनि विधि जो है सुखदानी ।
'दौल' आपकरि आप आप मैं,
ध्याय ल्याय लय समरससानी ।।३।। आप.।।

हे चेतन! यह तेरी कौन सी चतुर बुद्धि है कि तू सद्गुरू की हितकारी शिक्षा को स्वीकार नहीं करता? अरे, काकतालिय न्याय की भाँति संयोगवश अर्थात् बड़ी कठिनाई से तुझे यह मनुष्य भव, उत्तम कुल और जिनवाणी श्रवण का उत्तम अवसर मिला है अतः अब तो सद्गुरू की शिक्षा को स्वीकार कर ।

हे चेतन! जिस प्रकार चाँदनी में प्रकाशित होने वाली भूमि चाँदनी की नहीं होती, उसी प्रकार यह आत्मा ज्ञेय पदार्थों को जानता हुआ भी उनका स्वामी नहीं होता, यही वस्तु का स्वरूप है। किन्तु हे मूर्ख! तू व्यर्थ ही हठ करके पर परिणति व संयोगों को पकड़ता है।

हे चेतन! तू वास्तव में शुद्ध ज्ञानस्वभावी है, किन्तु अज्ञानमय राग–द्वेष करके तूने अपने सहज स्वभाव की स्वच्छता को नष्ट कर लिया है। इन्द्रियाँ तो जड़ हैं तथा उनके विषय भी अचेतन हैं, उनमें कोई भी इष्ट या अनिष्ट नहीं है, किन्तु तूने स्वयं ही उनमें इष्ट–अनिष्टपना मान रखा है।

हे चेतन! तू चाहता तो सुख है, किन्तु अनादि से दुःख ही पाता है, अतः अब सद्गुरू द्वारा बताये हुये इस सुखदायक उपाय को सुन एवं समझ। दौलतरामजी कहते है कि यदि यह आत्मा स्वयं, स्वयं के द्वारा और स्वयं में ही ध्यानपूर्वक लीन हो जाये तो समता रस के आनंद में निमग्न हो सकता है।

6 हे मन तेरी को कुटेव

हे मन तेरी को कुटेव यह, करनविषय में धावै है।।टेक।।

इनही के वश तू अनादि तैं, निजस्वरूप न लखावै है।
पराधीन छिन छीन समाकुल, दुर्गति विपति चखावै है।।१।।

फरस विषय के कारन बारन, गरत परत दुःख पावै है।
रसना इन्द्रियवश झष जल में, कंटक कंठ छिदावै है।।२।।

गन्धलोल पंकज मुद्रित में, अलि निज प्रान खपावै है।
नयनविषयवश दीप–शिखा में, अंग पतंग जरावै है।।३।।

करन विषयवश हिरन अरन में, खलकर प्रान लुटावै है।
'दौलत' तज इनको जिन को भज, यह गुरु सीख सुनावै है।४।।

हे मन! यह तेरी कैसी बुरी आदत है कि तू पंच इन्द्रिय–विषयों में ही दौड़ लगाता है।

इन्हीं के वशीभूत होने के कारण तू अनादि काल से अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं देख पा रहा है तथा इन इन्द्रिय–विषय के पराधीन होकर जो कि तुझे प्रत्येक क्षण आकुलता पैदा करने वाले हैं और दुर्गति के दु:खों का अनुभव कराने वाले हैं।

हे मन! जैसे स्पर्शन इन्द्रिय के विषय के कारण हाथी हथनी के पीछे गढ्ढे में गिरकर बहुत दु:ख पाता है। रसना इन्द्रिय के वशीभूत होकर मछली जल में रहती हुई भी कांटे से अपने कण्ठ का छेदन करवाती है।

घ्राण इन्द्रियवश गन्ध का लोभी भ्रमर कमल में बन्द होकर अपने प्राण गँवा देता है। चक्षु इन्द्रिय के विषयवश पतंगा दीपक की लौ में गिरकर अपना शरीर जला देता है।

कर्ण इन्द्रिय के विषयवश हिरण जंगल में दुष्टों के चंगुल में फँसकर अपने प्राण गँवा देता है।

अत: कविवर दौलतराम जी कहते हैं कि हे मन! सद्गुरु तुझे ऐसी शिक्षा दे रहे हैं कि तू इन इन्द्रिय विषयों का त्याग कर और जिनेन्द्र भगवान का ही भजन कर।

7

बाबा मैं न काहू का

बाबा ! मैं न काहू का, कोई नहीं मेरा रे ।।बाबा.।।टेक।।
सुर नर नारक तिरयक गति मैं,
मो कों करमन घेरा रे ।।१।।बाबा.।।

मात पिता सुत तिय कुल परिजन, मोह गहल उरझेरा रे ।
तन धन बसन भवन जड़ न्यारे,
हूँ चिन्मूरत न्यारा रे ।।२।।बाबा.।।

मुझ विभाव जड़ कर्म रचत हैं, करमन हमको फेरा रे ।
विभाव चक्र तजि धारि सुभावा,
अब आनन्दघन हेरा रे ।।३।।बाबा.।।

खरच खेद नहीं अनुभव करते, निरखि चिदानन्द तेरा रे ।
जप तप व्रत श्रुत सार यही है,
बुधजन कर न अबेरा रे ।।४।।बाबा.।।

हे भाई! इस जगत में मेरा किसी से कोई सम्बन्ध नहीं है, न तो मैं किसी का हूँ और न ही कोई मेरा है।

मुझे तो स्वर्ग, नरक, तिर्यन्च और मनुष्य इन चार गतियों में कर्मों ने मेरी स्वयं की भूल से बाँध रखा है।

माता–पिता, पुत्र–पत्नी, कुल–परिवारजन ये सब मोह के कारण होने से मुझे उलझाने वाले है तथा तन, धन, वस्त्र, भवन आदि ये जड़ पदार्थ तो मुझसे अत्यंत भिन्न हैं और मैं तो इनसे पृथक चैतन्यमूर्ति न्यारा तत्त्व हूँ।

मेरे में उत्पन्न होने वाले विकारी भाव पुद्गल कर्मों द्वारा उत्पन्न किये गये हैं, उन कर्मों ने हमें परेशान कर दिया है, अतः अब मैंने विभावी भावों के चक्र का त्यागकर अपने स्वभाव को धारण कर लिया है, तथा अब मैंने आनन्द स्वभावी आत्मा को देख लिया है अर्थात् उसका अनुभव कर लिया है।

अतः बुधजन कवि कहते हैं कि जब से मैंने अपने चैतन्य आनन्द स्वभावी आत्मा को देख लिया है तब से मैं किंचित भी दुःख का अनुभव नहीं करता हूँ। समस्त जप, तप, व्रत और जिनागम का भी यही सार है, अतः हे जीव! अब तुझे आत्मकल्याण में देर नहीं करनी चाहिये।

8

अहो भवि प्राणी चेतिये

अहो भवि प्राणी चेतिये हो, छिन छिन छीजत आव।।टेक।।
घड़ी घड़ी घड़ियाल रटत है, कर निज हित अब दाव ।।अहो.।।

जो छिन विषय भोग में खोवत, सो छिन भजि जिन नाम।
वातैं नरकादिक दुःख पैहै, यातैं सुख अभिराम ।।अहो.।।१।।

विषय भुजंगम के डसे हो, रुले बहुत संसार।
जिन्हैं विषय व्यापै नहीं हो, तिनको जीवन सार ।।अहो.।।२।।

चार गतिनिमें दुर्लभ नर भव, नर बिन मुक्ति न होय।
सो तैं पायो भाग उदय हों, विषयनि–सँग मति खोय ।।अहो.।।३।।

तन धन लाज कुटुँब के कारन, मूढ़ करत है पाप।
इन ठगियों से ठगायकै हो, पावै बहु दुःख आप ।।अहो.।।४।।

जिनको तू अपने कहै हो, सो तो तेरे नाहिं।
कै तो तू इनकौं तजै हो, कै ये तुझे तज जाहिं ।।अहो.।।५।।

पलक एक की सुध नहीं हो, सिर पर गाजै काल।
तू निचिन्त क्यों बावरे हो, छांडि दे सब भ्रम जाल ।।अहो.।।६।।

भजि भगवन्त महन्त को हो, जीवन–प्राण आधार।
जो सुख चाहै आपको हो, 'द्यानत' कहै पुकार ।।अहो.।।७।।

हे भव्य प्राणी! तू अब चेत, जाग जा! एक–एक क्षण करके तेरी आयु बीती जा रही है और यह घड़ी हर क्षण टिक–टिक आवाज कर कह रही है कि अभी भी अवसर है अपने हित का कोई कार्य कर लो।

हे जीव! जो क्षण तू विषय–भोगों में खो रहा है उस क्षण को तू श्री जिनेन्द्र भगवान के नाम को भजने में लगा क्योंकि विषय–भोगों से तो नरकादिक दु:ख मिलते हैं और जिन नाम के सुमिरन से आत्मिक सुख की प्राप्ति होती है।

विषय–भोगरूपी सर्प के डसने पर बहुत काल तक संसार में भटकना पड़ता है, अत: जिनके जीवन में विषय भोग नहीं है वास्तव में उनका जीवन ही सार स्वरूप है, प्रयोजनवान है।

चारों गतियों में अत्यंत दुर्लभता से यह मनुष्य पर्याय प्राप्त होती है और इसके बिना मुक्ति की प्राप्ति संभव नहीं है। ऐसा मनुष्य जन्म तुमने पुण्य उदय से प्राप्त कर लिया है अत: अब विषय भोगों में लगाकर इसे बरबाद मत करो।

अज्ञानी मनुष्य इस देह, धन, इज्जत और कुटुम्ब के कारण पाप कार्य करता है और इन ठगों से ठगा जाकर वह स्वयं बहुत दु:ख पाता है।

जिनको तू अपना कहता है, वे तो तेरे हैं नहीं क्योंकि आयु समाप्ति पर या तो तू उनको छोड़ देगा अन्यथा ये तुझको छोड़कर चले जायेंगे।

हे जीव! काल सदा सिर पर मंडरा रहा है और एक पल का भी विश्वास नहीं है, ऐसे समय में भी मूर्ख तू निश्चिन्त क्यों हो गया है? यह सब भ्रमजाल है इसको छोड़ दे।

द्यानतरायजी पुकारकर कहते हैं कि जो तू अपना सुख चाहता है तो जिनेन्द्र भगवान का भजन कर, यह ही वास्तव में तेरे जीवन का आधार है।

9 ज्ञानी जीव निवार भरमतम

ज्ञानी जीव निवार भरमतम,
वस्तुस्वरूप विचारत ऐसैं ।।टेक।।

सुत तिय बंधु धनादि प्रगट पर, ये मुझतैं हैं भिन्नप्रदेशैं।
इनकी परनति है इन आश्रित, जो इन भाव परनवैं वैसे ।।१।। ज्ञानी.।।

देह अचेतन चेतन मैं, इन परनति होय एक सी कैसैं।
पूरनगलन स्वभाव धरै तन, मैं अज अचल अमल नभ जैसैं।।२।। ज्ञानी.।।

पर परिनमन न इष्ट अनिष्ट न, वृथा रागरुष द्वंद भयेसैं।
नसै ज्ञान निज फँसै बंधमें, मुक्त होय समभाव लयेसैं ।।३।। ज्ञानी.।।

विषयचाह दवदाह नसै नहिं, विन निज सुधा सिंधुमें पैसैं।
अब जिनवैन सुने श्रवननतैं, मिटे विभाव करूं विधि तैसैं ।।४।। ज्ञानी.।।

ऐसो अवसर कठिन पाय अब, निजहितहेत विलम्ब करेसैं।
पछताओ बहु होय सयाने चेतन, 'दौल' छुटो भव भयसैं ।।५।। ज्ञानी.।।

ज्ञानी जीव अपने भ्रमरूपी अन्धकार को दूर करके वस्तु स्वरूप का विचार इस प्रकार करते हैं कि –

पुत्र, स्त्री, भाई, धन आदि पदार्थ तो स्पष्टतया पर हैं, क्योंकि इनके प्रदेश ही मुझसे भिन्न हैं। इन पदार्थों की परिणति इनके स्वयं के आश्रित है अर्थात ये सब अपने जैसे भाव करते हैं वैसे ही परिणमित होते हैं।

यह शरीर तो अचेतन है और मैं चेतन तत्त्व हूँ। चेतन और अचेतन दोनों की परिणति एक कैसे हो सकती है? यह शरीर तो पूरन–गलन स्वभाव को धारण करता है और मैं आकाश की भाँति विशाल, स्थिर और निर्मल तत्त्व हूँ।

हे जीव! पर पदार्थों का परिणमन न इष्ट है और न अनिष्ट है, अत: उसमें राग–द्वेष रूप झगड़ा करना व्यर्थ है क्योंकि यह करने से ज्ञान का नाश होता है और जीव कर्मों के बन्धनों में फँस जाता है। अत: यदि यह जीव इनको छोड़कर समता भाव में लीन हो जाये, तो इसे मुक्ति की प्राप्ति हो जाये।

अहो! यह विषय चाह रूपी भयंकर अग्नि अपने ज्ञानरूपी अमृतसागर में जमे बिना शांत नहीं हो सकती है। भाग्योदय से मैंने अब जिनवाणी कानों से सुनी है, अत: मुझे अब ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे ये समस्त विभाव नष्ट हो जाये।

कविवर दौलतरामजी कहते हैं कि, हे सयाने चेतन! अब यदि ऐसा दुर्लभ अवसर पाकर भी तूने आत्मकल्याण के कार्य में विलम्ब कर दिया तो तुझे बहुत पश्चाताप होगा, अत: अब शीघ्र ही इस संसार के भय से मुक्त हो।

10

अब हम अमर

अब हम अमर भये न मरेंगे,
या कारन मिथ्यात्व दियो तज, क्यों करि देह धरेंगे ।।टेक।।

उपजे मरे काल तैं प्राणी, तातें काल हरेंगे।
राग–द्वेष जग बंध करत है, इनको नाश करेंगे ।।१।।

देह विनाशी मैं अविनाशी, भेदज्ञान पकरेंगे।
नासी जासी हम थिरवासी, चोखे व्है निखरेंगे ।।२।।

मरे अनन्त वार बिन समझे, अब सब दुःख विसरेंगे।
"द्यानत" निपट–निकट दो अक्षर, बिन सुमरे सुमरेंगे ।।३।।

अपने आत्म स्वरूप का भान होने पर साधक जीव कहता है कि मैं तो अजर–अमर तत्त्व हूँ, मेरा कभी विनाश नहीं होता क्योंकि जिस मिथ्यात्व के कारण यह संसार मिलता है मैंने उस मिथ्यात्व को ही नष्ट कर दिया है तो अब पुनः इस देह का संयोग मुझे कैसे होगा?

काल द्रव्य के परिणमन के कारण प्राणी जन्म–मरण का चक्र करता है। अब हम अपने निज शुद्ध स्वरूप में ठहरकर इस काल की पराधीनता से अर्थात् जन्म–मरण से मुक्त हो जायेंगे तथा जो राग–द्वेष जगत में बंधन के कारण हैं, उनका हम नाश करेंगे।

यह देह तो नाशवान है और मैं अविनाशी तत्त्व हूँ –हम इस भेदज्ञान को समझकर ग्रहण करेंगे। यह देह तो नाशवान होने से नष्ट हो जायेगी और यह आतमा सदा काल रहने वाला है, अतः ऐसे भेदज्ञान में डूबकर हम निर्मल शुद्ध रूप में निखर जायेंगे।

कवि द्यानतरायजी कहते हैं कि अभी तक हमने आत्म स्वरूप को समझे बिना अनन्त बार जन्म–मरण धारण किया अतः अब उन सब दुःखों को भूलकर केवल दो अक्षर 'सोहं' (मैं वह सिद्ध स्वरूप हूँ) का ही निरंतर सुमिरण करेंगे अर्थात् उस शाश्वत रूप की ही पहचान और प्रतीति करेंगे।

स्तवन संजीवनी

1

णमोकार महामंत्र

णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं,
णमो आइरियाणं
णमो उवज्झायाणं,
णमो लोए सव्व साहूणं ।।

णमोकार मंत्र की महिमा

एसो पंचणमोयारो सव्व पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होहि मंगलम् ।।

2

जिनजीनी वाणी

सीमंधर मुखथी फूलडां खरे,एनी कुंदकुंद गूंथे माळ रे,
जिनजीनी वाणी भली रे,

वाणी भली मने लागे रळी,जेमां सार-समय शिरताज रे.
जिनजीनी वाणी भली रे.... सीमंधर

गूंथ्यां पाहुड ने गूंथ्युं पंचास्ति, गूंथ्युं प्रवचनसार रे,
जिनजीनी वाणी भली रे,

गूंथ्युं नियमसार, गूंथ्युं रयणसार,गूंथ्यो समयनो सार रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.... सीमंधर

स्याद्वाद केरी सुवासे भरेलो, जिनजीनो ॐकार नाद रे,
जिनजीनी वाणी भली रे

वंदु जिनेश्वर, वंदु हुं कुंदकुंद, वंदु ए ॐकारनाद रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.... सीमंधर

हैडे हजो, मारा भावे हजो, मारा ध्याने हजो जिनवाण रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.

जिनेश्वरदेवनी वाणीना वायरा, वाजो मने दिनरात रे,
जिनजीनी वाणी भली रे....सीमंधर.

3

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो ! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो.

(अनुष्टुप)

अहो ! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना !
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां.

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे.

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयुं 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके, परद्रव्य नातो तूटे;
राग-द्वेष रुचे न, जंपे न वळे भावेन्द्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा.

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र ! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र ! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी ! तने नमुं हुं.

(स्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति ! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी !

4 अमूल्य तत्त्वविचार

बहु पुण्यकेरा पुंजथी शुभ देह मानवनो मळ्यो,
तोये अरे ! भवचक्रनो आंटो नहि एक्के टळ्यो;
सुख प्राप्त करतां सुख टळे छे लेश ए लक्षे लहो,
क्षण क्षण भयंकर भावमरणे कां अहो राची रहो ? १.

लक्ष्मी अने अधिकार वधतां, शुं वध्युं ते तो कहो ?
शुं कुटुम्ब के परिवारथी वधवापणुं ए नय ग्रहो;
वधवापणुं संसारनुं नर देहने हारी जवो,
एनो विचार नहीं अहोहो ! एक पळ तमने हवो !!! २

निर्दोष सुख निर्दोष आनंद, ल्यो गमे त्यांथी भले,
ए दिव्य शक्तिमान, जेथी जंजीरेथी नीकळे;
परवस्तुमां नहि मूंझवो, एनी दया मुजने रही,
ए त्यागवा सिद्धांत के पश्चात् दुःख ते सुख नहीं. ३

हुं कोण छुं ? क्यांथी थयो ? शुं स्वरूप छे मारुं खरुं ?
कोना संबंधे वळगणा छे ? राखुं के ए परहरुं ?
एनो विचार विवेकपूर्वक शांत भावे जो कर्या,
तो सर्व आत्मिक ज्ञाननां सिद्धांततत्त्व अनुभव्यां. ४

ते प्राप्त करवा वचन कोनुं सत्य केवळ मानवुं ?
निर्दोष नरनुं कथन मानो 'तेह' जेणे अनुभव्युं;
रे ! आत्म तारो ! आत्म तारो ! शीघ्र एने ओळखो,
सर्वात्ममां समदृष्टि द्यो आ वचनने हृदये लखो. ५

5

भगवती माता-स्तुति

सुखधाम अनंत सुसंत चही, दिनरात रहे तद्ध्यान महीं;
परशांति अनंत सुधामय जे, प्रणमुं पद ते वर ते जय ते.

करी बाळवये बहु जोर, आतमध्यान धर्युं;
सांधी आराधनदोर, सम्यक् तत्त्व लह्युं,
मीठी-मीठी विदेहनी वात तारे उर भरी;
अम आत्म उजाळनहार, धर्मप्रकाश करी,

सीमंधर-गणधर-संतना, तमे सत्संगी;
अम पामर तारण काज पधार्या करुणांगी.
तुज ज्ञान-ध्याननो रंग अम आदर्श रहो;
हो शिवपद तक तुज संग, माता ! हाथ ग्रहो.

6 एक अद्‌भुत आतमा

एक अद्‌भुत आतमा, वीरनो मारग जाणता;
मुमुक्षुओ वखाणतां, ए प्रभावशाळी आतमा ।।१।।

समयसार ने क्षणनारो, सर्व दोषने हणनारो;
मुक्ति ने ते वरनारो, ए प्रभावशाळी आतमा ।।२।।

आध्यात्मिक ए योगी छे, आतमरसनो भोगी छे;
शुद्धस्वरुप संयोगी छे, ए प्रभावशाळी आतमा ।।३।।

पूर्वभवमां पामेलो, ते पण साथे लावेलो;
तत्वज्ञानमां रसघेलो, ए प्रभावशाळी आतमा ।।४।।

कुंद–सीमंधर वारस छे, रत्न चिंतामणी पारस छे;
अंतर जेनुं आरस छे, ए प्रभावशाळी आतमा ।।५।।

आत्म मस्तीमां मस्त रहे, सघळां नुं ए हित चहे;
कर्मशत्रु ने नित्य दहे, ए प्रभावशाळी आतमा ।।६।।

महाप्रतापी पुरुष छे, भेदज्ञान नो स्फुरक छे;
जाणे उगतो सूरज छे, ए प्रभावशाळी आतमा ।।७।।

नही ओळखे ते पस्ताशे, भव रखडी खत्तां खाशे;
जाणनारा फावी जाशे, ए प्रभावशाळी आतमा ।।८।।

तेने कदी ना विसारीए, आज्ञा एनी शिर धरीए;
भव–सागर सहेजे तरीए, ए प्रभावशाळी आतमा ।।९।।

गुरुदेव ने पाये लागु छुं, अविनय नी माफी मांगु छुं;
सेवा–भक्ति याचुं छुं, ए प्रभावशाळी आतमा ।।१०।।

ए भारतनी विभूति छे, सिद्धपदनी समजूती छे;
केवळ करुणामूर्ति छे, ए प्रभावशाळी आतमा ।।११।।

करुणा अपरंपार छे, पुण्यशाळी पारावार छे;
तेने वंदन लाखोवार छे, ए प्रभावशाळी आतमा ।।१२।।

7

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर ! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुन्द संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी.

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज ! तारामां भावो ब्रह्मांडनां भर्या.

(शिखरिणी)

अहो ! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोडे परिणति.

(शार्दूलविक्रीडित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथी साधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो.

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकल ज्ञायकदेव रीझे.

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुन्दननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुन्दसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी.

8 विरह भक्ति

गुरु मने सांभरशे सथवारो
तारो मने सांभरशे सथवारो....
मोतीचंदभाई घेर मोती रे पाक्युं, उजमबा मातानुं रत्न आ झबक्युं
वहावी वीतरागी वाणी धारा रे, तारो मने सांभरशे सथवारो....
गुरु मने सांभरशे सथवारो....
समवसरण आ सुनुं रे थाशे, स्वर्णपुरी नी शोभा करमाशे
चीर विरह थारो थतां रे, तारो मने सांभरशे सथवारो....
गुरु मने सांभरशे सथवारो....
भक्तों विनवे गुरुजी फरीथी पधारो, माताजीने रही गयो विरह आ तारो
भक्त विनवे गुरुजी एक बार आओ, पाछा फरो गुरु व्हाला रे
तारो मने सांभरशे सथवारो....
गुरु मने सांभरशे सथवारो....,
माता हृदये म्हारा गुरुजी समाया, अम हृदये गुरुजी एवा कोतराया
शाने तारो चीर विहार रे, गुरु तारो सांभरशे सथवारो....
गुरु मने सांभरशे सथवारो....
तारो मने सांभरशे सथवारो....
गुरु मने सांभरशे सथवारो....

9 गुरुदेव प्रत्ये क्षमापना-स्तुति

गुरुदेव ! तारां चरणमां फरी फरी करुं हुं वंदना,
स्थापी अनंतानंत तुज उपकार मारा हृदयमां. १.

करीने कृपादृष्टि, प्रभु ! नित राखजो तुम चरणमां,
रे ! धन्य छे ए जीवन जे वीते शीतळ तुज छांयमां. २.

गुरुदेव ! अविनय कँई थयो, अपराध कँई पण जे थया,
करजो क्षमा अम बाळने, ए दीनभावे याचना. ३.

मन-वचन-काय थकी थया, जाण्ये-अजाण्ये दोष जे,
करजो क्षमा सौ दोषनी, हे नाथ ! विनवुं आपने. ४.

तारी चरणसेवा थकी सौ दोष सहेजे जाय छे,
क्रोधादि भाव दूरे थई भावो क्षमादिक थाय छे. ५.

गुरुवर ! नमुं हुं आपने, अम जीवनना आधारने,
वैराग्यपूरित ज्ञान-अमृत सींचनारा मेघने. ६.

मिथ्यात्वभावे मूढ थई निजतत्त्व नहि जाण्युं अरे !
आपी क्षमा ए दोषनी आ परिभ्रमण टाळो हवे. ७.

सम्यक्त्व-आदिक धर्म पामुं, तुज चरण-आश्रय वडे;
जय जय थजो प्रभु ! आपनो, सौ भक्त शासनना चहे. ८.

10

सहजात्म स्वरुप सर्वज्ञदेव

(धुन)

सहजात्म स्वरूप सर्वज्ञदेव परमगुरु.....

सहजात्म स्वरूप सर्वज्ञदेव परमगुरु.....

सहजात्म स्वरूप सर्वज्ञदेव परमगुरु.....

सहजात्म स्वरूप सर्वज्ञदेव परमगुरु.....

सहजात्म स्वरूप सर्वज्ञदेव परमगुरु.....

सहजात्म स्वरूप सर्वज्ञदेव परमगुरु.....

ADHYATAM SANJEEVANI & STAVAN SANJEEVANI
· Songs Available On AUDIO APP ·

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust
302, Krishna Kunj, V. L. Mehta Marg, Vile Parle (West)
Mumbai - 400 056 INDIA
Tel. : +91 22 2613 0820 / 2610 4912
info@vitragvani.com www.vitragvani.com / vitragvanee /c/vitragvanii